भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा (Dignity Of Person) को प्राप्य मूल्यों के रूप में निरूपित किया गया है। हमारा संविधान जाति, वर्ग, धर्म, आय एवं लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करता है। लोकत्रांतिक समाज की स्थापना के लिए हमारे संवैधानिक मूल्य स्पष्ट दिशानिर्देश प्रदान करते हैं और इस प्रकार एक समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में बच्चे को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक, वर्गीय, लैंगिक, शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न देखे जाने के बजाय एक स्वत्रंत अधिगमकर्त्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है, जिससे लोकत्रांतिक समाज में बच्चे के समुचित समावेशन हेतु वातावरण का सृजन किया जा सके। समावेशन की ठोस प्रक्रिया प्रतीकात्मक लोकतंत्र से भागीदारी आधारित लोकतंत्र का मार्ग प्रशस्त करती है।

समावेशी समाज का विकास उसमें निहित सम्पूर्ण मानवीय क्षमता के कुशलतापूर्वक उपभोग पर निर्भर करता है। समाज के सभी वर्गों की सहभागिता के बिना समावेशी समाज का विकास सम्भव नहीं हो सकता है। शिक्षा समावेशन की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण औजार है। शिक्षा ही वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक बच्चा लोकत्रांतिक प्रक्रिया में अपनी भूमिका के लिए तैयारी करता है, वहीं दूसरी ओर समावेशन में बाधक तत्वों से निबटने का सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है।

> *'समावेशन' शब्द का अपने आप में कुछ खास अर्थ नहीं होता है। समावेशन के चारों तरफ जो वैचारिक, दार्शनिक, शैक्षिक ढाँचा होता है वही समावेशन को परिभाषित करता है। समावेशन की प्रक्रिया में बच्चे को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है, बल्कि यह सीखने एवं विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अन्तःक्रिया करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।* ***(एन.सी.एफ.2005, पृष्ठ 96)***

बच्चों का समाजीकरण एक समान प्रक्रियाओं से होकर नहीं गुजरता, अतः समावेशन की प्रक्रिया भी एक समान नहीं रहती है। जिससे बच्चे के लिए वर्ण, जाति लिंग, न्याय एवं लोकतंत्र के नजरिए प्रभावित होते हैं। जब इस प्रकार के नजरिए को कई दृष्टियों से बल मिलता है तो ये मूल्यों में बदल जाते हैं। ये मूल्य संस्कृति में तत्पश्चात विचारधाराओं में बदलने की प्रक्रिया इसी क्रम की अगली शृंखला होती है। यह दुश्चक्र बार-बार के अनुभवों के पुर्नबलन से मजबूत होता जाता है। अतः इस दुश्चक्र को तोड़ने के लिए बच्चे के अनुभवों में बदलाव लाना आवश्यक होता है। साथ ही यह भी जरूरी है कि बदलाव लाने वाला अनुभव बहुत सशक्त होना चाहिए जिससे पुराने अनुभवों को परिवर्तित करने/बदलने में मदद मिल सके। इस प्रकार बच्चे को परिवार, विद्यालय एवं समाज से ऐसे समावेशी अनुभव, समावेशी व्यवहार, समावेशी विश्वास एवं समावेशी संस्कृति उपलब्ध कराई जानी चाहिए जिससे वह एक ऐसे लोकतांत्रिक नागरिक के रूप में विकसित हो सके जो समावेशन के मूल्यों में दृढ़ आस्था रखता हो।

बच्चों को समाज में जो अनुभव, संस्कृति या मूल्य प्राप्त होते हैं, वह कहीं न कहीं विद्यालय में उनके व्यवहार में भी परिलक्षित होते हैं। हमारे समाज में विद्यमान असमानताएँ हमारी शिक्षण प्रक्रिया को भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करती हैं।

इस प्रकार समावेशन की प्रक्रिया के पारिवारिक, शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आयाम हो सकते हैं। यहाँ पर हमारा सरोकार बच्चे के समावेशन की दो महत्वपूर्ण एजेन्सियों परिवार एवं विद्यालय से है, अतः इस आलेख में इन्हीं दो पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है।

<u>परिवार तंत्र</u>

बच्चे के सामाजीकरण की प्रथम पाठशाला उसका परिवार होता है, इसे अस्वीकारने का कोई ठोस आधार भी नहीं है। इस सामाजीकरण के अनेक प्रारूप हो सकते हैं परन्तु इतना तय है कि बच्चे के सामाजीकरण में परिवार की अहम् भूमिका होती है। परिवार में बच्चे के सामाजीकरण की उचित प्रक्रिया समावेशन हेतु आधार भूमि तैयार करती है। एक सामान्य बच्चे के सन्दर्भ में यह बहुत जरूरी है, लेकिन एक विशेष आवश्यकता

वाले बच्चे के लिए इसके गहन निहितार्थ हैं। विशेष आवश्यकता वाले बच्चे के समावेशन का द्वार परिवार तंत्र में उसके समुचित समावेशन से होकर गुजरता है। परिवार लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रश्रय देता है। अगर परिवार में निर्णयों में सहभागिता है, परिवार में सभी को अपनी सहमति या असहमति व्यक्त करने के समान अवसर हैं तब इतना निश्चित है कि समावेशन के बारे में बच्चे के मजबूत सकारात्मक अनुभव होंगे। इसके उलट होने की स्थिति में बच्चा समावेशन के बारे मे नकारात्मक अनुभव ग्रहण करेगा। यह बात बहुत अधिक सतही लग सकती है, परन्तु इसके गम्भीर निहितार्थ हैं।
उदाहरण के लिए-

1. परिवार में खान-पान, शिक्षा, व्यवसाय, सम्पत्ति आदि के बारे में निर्णय एवं सहभागिता में लैंगिक आधार पर विभेद किया जाता है या नहीं किया जाता है।
2. परिवार में या आसपास मौजूद शारीरिक एवं मानसिक रूप से विशेष चुनौती वाले बच्चों/व्यक्तियों के प्रति परिवार का नजरिया किस प्रकार का है ?
3. समाज के सामाजिक एवं आर्थिक रूप से अपवंचित वर्गों के बच्चों/ व्यक्तियों के प्रति परिवार का नजरिया किस प्रकार का है ?
4. परिवार में लोकतांत्रिक मूल्यों (समानता, विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा आदि) मूल्यों के लिए पोषक वातावरण है या नहीं।

परिवार एवं परिवेश से प्राप्त समावेशी अनुभव, व्यवहार, विश्वास एवं संस्कृति के आधार पर बच्चे में समावेशी मूल्यों का विकास होता है।
विशेष आवश्यकता वाले बच्चे के समावेशन का द्वार परिवार तंत्र में उसके समुचित समावेशन से गुजरता है। प्रायः परिवार इस प्रकार के बच्चों के लिए निम्नांकित दो चरम दृष्टिकोण अपनाते रहे हैं-

अति संरक्षण (Over protection)

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति यह दृष्टिकोण बच्चे की स्वनिर्भरता की प्रक्रिया में बाधक बनता है, जिसका समग्र परिणाम उसके समावेशन की प्रक्रिया में अवरोध के रूप में सामने आता हैं। बच्चे में उसकी सामर्थ्य/क्षमता के अनुरूप समाज में समावेशन की प्रक्रिया का बीजारोपण करना परिवार की अहम् जिम्मेदारी है।

अस्वीकरण (Rejection)

इन बच्चों के प्रति परिवार के दृष्टिकोण का यह दूसरा चरम छोर है। परिवार का यह दृष्टिकोण इस तथ्य का प्रतिरूपण करता है कि बच्चे की सामर्थ्य/क्षमता पर परिवार का विश्वास नहीं है। परिवार की दूसरी भूमिका यह भी है कि वह बच्चे में यह अनुभूति, विश्वास एवं मूल्य प्रतिस्थापित करे कि बच्चे को समाज में अपने समावेशन के बारे में विश्वास भी हो सके।
समग्र रूप से परिवार विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के सन्दर्भ में दो मुख्य भूमिकाओं का निर्वहन करता है-

- इस प्रकार के बच्चे के समावेशन हेतु सामाजीकरण के विभिन्न उपादानों को उपलब्ध कराना तथा इसके लिए समुचित वातावरण निर्मित करना।

- यह भूमिका पहली भूमिका से ही निरूपित होती है। इसमें बच्चे को इस प्रकार के अनुभव, विश्वास, संस्कृति उपलब्ध कराई जाती है जिससे समावेशन के बारे में बच्चे के सकारात्मक मूल्य निर्मित हो सकें।

<u>शिक्षा तंत्र</u>

बच्चा परिवार के बाद जिस लघु समाज से परिचित होता है, वह उसका विद्यालय समाज होता है। बच्चा अपने परिवार से कुछ न कुछ सकारात्मक या नकारात्मक मूल्य लेकर विद्यालय में आता है। यहाँ पर विद्यालय/शिक्षा तंत्र की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है कि -

- बच्चा समावेशन के बारे में जो भी नकारात्मक अनुभव, विश्वास , संस्कृति एवं मूल्य लेकर विद्यालय आता है, उनका परिमार्जन करने हेतु उपयुक्त वातावरण निर्मित करें।
- विद्यालय में निश्चित रूप से कुछ बच्चे समावेशन के बारे में सकारात्मक अनुभव, विश्वास , संस्कृति एवं मूल्य लेकर भी आते हैं, इनको फलने फूलने एवं अन्य बच्चों के साथ साझा करने के लिए वातावरण उपलब्ध कराएँ ।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हम सभी विद्यालयों को एक ऐसे रूप में परिलक्षित कर रहे हैं जहाँ पर बच्चे की विभिन्नताओं (शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, लैंगिक आदि) के होते हुए भी उन्हें सभी के साथ मिलकर ज्ञान सृजन करने के समान अवसर मिल सकें। उनकी वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुरूप उन्हें कक्षा-कक्ष में उचित वातावरण मिल सके ताकि वे आत्म विश्वास, आत्मसम्मान, सकारात्मक सोच, प्रभावी सम्प्रेषण आदि गुणों को स्वयं में विकसित करते हुए सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास की ओर अग्रसर हो सकें।
शिक्षा में समावेशन का वैचारिक एवं दार्शनिक आधार यह है कि-

1. प्रत्येक बच्चा स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है
2. बच्चों के सीखने के तौर तरीकों में विविधता होती है, जैसे-अनुभवों के माध्यम से, चीजों को करने से, प्रयोग करके, पढ़ने, चर्चा करने, प्रश्न पूछने, सुनने, सोचने, चिन्तन करने, अभिव्यक्त करने, छोटे एवं बड़े समूह में गतिविधियाँ करने आदि तरीकों से बच्चा सीखता है।
3. बच्चों को सीखने-सिखाने के क्रम में समुचित अवसर देने की आवश्यकता होती है।
4. बच्चों को सिखाने से पूर्व सीखने-सिखाने के लिए तैयार करने हेतु समुचित वातावरण निर्मित करने की आवश्यकता होती है।
5. बच्चा अनेक तथ्य याद तो कर सकता है परन्तु उन्हीं तथ्यों, अवधारणा एवं विचारों की अपने परिवेश से सम्बद्धता बिठा पाता है, जिनके बारे में उसकी भली-भाँति समझ बन चुकी है।

6. सीखने की प्रक्रिया न केवल विद्यालय में वरन् विद्यालय के बाहर भी निरन्तर चलती रहती है। अतः सीखने-सिखाने की प्रक्रिया इस प्रकार संचालित की जानी चाहिए कि बच्चा सीखने की प्रक्रिया में संलग्न हो जाए तथा समझ विकसित करे बजाय इसके कि वह परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए मात्र तथ्यों को रटता रहे।

7. सीखना किसी माध्यम या इसके बगैर भी सम्भव हो सकता है। अतः इसके लिए सीखने-सिखाने की प्रक्रिया आरम्भ करने से पूर्व बच्चे के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को जानना /समझना महत्वपूर्ण है।

8. शिक्षार्थियों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषायी, पृष्ठभूमि के प्रति आदर रखना।

समावेशन की नीति को हर स्कूल एवं सारी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किए जाने की जरूरत है। बच्चे के जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह स्कूल में हो या बाहर, सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की जरूरत है। स्कूलों को ऐसे केन्द्र बनाए जाने की आवश्यकता है, जहाँ बच्चों को जीवन की तैयारी कराई जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी बच्चे खासकर शारीरिक एवं मानसिक रूप से असमर्थ बच्चों और कठिन परिस्थितियों में जीने वाले बच्चों को इस क्षेत्र के सबसे ज्यादा फायदे मिल सकें। ***(एन.सी.एफ.2005, पृष्ठ 96)***

अतः विद्यालयों में बच्चे के समावेशन के दो आयाम स्पष्टत: नजर आते हैं-

1.बच्चे को समझना : विद्यालयी प्रणाली में शामिल प्रत्येक बच्चे को उसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषायी, शारीरिक क्षमता, मानसिक सामर्थ्य एवं उसके अधिगम के तौर तरीकों के सन्दर्भ में समझना आवश्यक है। इसी समझ के आधार पर बच्चे की सीखने-सिखाने की आवश्यकता के उपादानों को पहचानने में मदद मिल सकेगी।

2.बच्चे की आवश्यकता के अनुसार विद्यालयी पाठ्यचर्या का अनुकूलन करना : यह आयाम प्रथम आयाम का व्यवहारिक निरूपण करता है। इसके दायरे में बच्चे की आवश्यकतानुसार पाठ्यवस्तु/विषय सामग्री, शिक्षण विधियों/शिक्षण तकनीकों, कक्षा-कक्ष की गतिविधियों एवं मूल्यांकन के तौर तरीकों में अनुकूलन करने में सहायता मिल सकेगी। हमें कक्षा को समग्रता में समझने की आवश्यकता है तथा प्रत्येक बच्चे को सीखने-सिखाने की एक स्वतंत्र इकाई के रूप में स्वीकारने की जरूरत है।

सामान्यतः विद्यालय कुछ गिने-चुने बच्चों को विभिन्न गतिविधियों में प्रदर्शन के अवसर देते रहते हैं। यद्यपि इन बच्चों को तो इससे फायदा होता है परन्तु अन्य बच्चे बार-बार उपेक्षित महसूस करते हैं। प्रशंसा हेतु श्रेष्ठता एवं योग्यता को आधार बनाने में प्रत्यक्षतः कोई बुराई भी नहीं दिखाई देती है परन्तु अवसर तो सभी बच्चों को मिलने चाहिए। इन बच्चों की विशिष्ट क्षमताओं को पहचाना जाना चाहिए और इन विशिष्ट क्षमताओं की भी तारीफ होनी चाहिए । यह सम्भव है कि इन बच्चों को अपना काम पूरा करने/प्रदर्शन करने के लिए अतिरिक्त समय या मदद की जरूरत होगी। इसके लिए अपेक्षित धैर्य समावेशन की प्रक्रिया के लिए आवश्यक है।

(एन.सी.एफ.2005, पृष्ठ 96)

विद्यालय में दण्ड एवं भय बच्चों में व्द्यिालय के प्रति अनुराग या लगाव को कम करते हैं, वहीं दूसरी तरफ बच्चों के सीखने में बाधा पहुँचाते हैं। सीखना बच्चे में विद्यालय के प्रति लगाव पैदा करने वाला सकारात्मक घटक है। अतः विद्यालयों में समावेशी माहौल बनाने के हेतु शारीरिक एवं मानसिक दण्ड का कोई स्थान नहीं हो सकता है। विद्यालय अनुशासन को थोपने के बजाय बच्चे का स्वानुशासित होना जरूरी है। इसके लिए विद्यालय में इस प्रकार का वातावरण सृजित किया जाना चाहिए जिससे बच्चा अपने चिन्तन एवं कर्म की जिम्मेदारी स्वयं लेना सीखे व दूसरों को पहुँचने वाली बाधा एवं पीड़ा को महसूस करना सीखे। विद्यालय बच्चों को स्वयं निर्णय लेने एवं इन निर्णयों के क्रियान्वयन में सक्षम बनाएँ। बच्चे विद्यालय में निर्णय लेने की प्रक्रिया एवं व्यवस्था से सीखते हैं। विद्यालय शिक्षार्थियों के लिए ऐसे मौके उपलब्ध करवाएँ कि बच्चे मौजूदा धारणाओं और समझ पर निर्णय ले पाए, उन्हें चुनौती दे पाएँ या उनमें कुछ नया जोड़ पाएँ।

<u>शिक्षा तंत्र में समावेशन में बाधा पहुँचाने वाले कारक</u>

1.बहुपरती शिक्षा प्रणाली : हमारे देश में विभिन्न स्तर एवं श्रेणियों के विद्यालय मौजूद हैं जिससे इनमें उपलब्ध शिक्षा अनुभवों में भारी फर्क है जिससे समाज में असमानताओं को कम करने में कोई मदद नहीं मिलती है। इस प्रकार शिक्षा प्रणाली द्वारा सृजित असमानता हाशिये पर स्थित बच्चे के बहिष्करण का कारक बनती है। हमारी शिक्षा प्रक्रिया समावेशन के बजाय बहिष्करण के (Exclusion) को बढ़ावा देती है, भेदभावपूर्ण एवं असमानता पर आधारित शिक्षा प्रणाली हासिये पर स्थित बच्चों के समावेशन मे कोई मदद नहीं करती है। मुख्यतः दो समूह इस प्रक्रिया से प्रभावित होते हैं।

बहिष्करण (Exclusion) की दृष्टि से दो संवेदनशील समूह हैं- पहला, आर्थिक/सामाजिक/लैंगिक आधार पर विशेष जरूरतों वाले बच्चे । और दूसरा, शारीरिक एवं मानसिक रूप से विशेष जरूरतों वाले बच्चे।

समावेशी समाज का निर्माण करने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण उपकरण है, समाज के प्रत्येक वर्ग को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अवसर मिलने पर-

- लोकतंत्र में सक्रिय भागीदारी के अवसर सुनिश्चित किए जा सकते हैं।
- समावेशन के प्रति सक्रिय, सचेत एवं सहभागी दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है।

2.दोषपूर्ण मूल्यांकन प्रणाली : हमारी शिक्षा में परीक्षा प्रणाली को भयादोहन के एक सशक्त औजार के रूप में प्रयोग किया जाता है। परीक्षा में असफलता के लिए अधिगमकर्त्ता को पूरी तरह से जिम्मेदार ठहराया जाता है, शिक्षा प्रणाली/तंत्र की कोई जवाबदेही तय नहीं है। बच्चे के लिए शिक्षा का मतलब परीक्षा पास करना होता है और शिक्षक का उद्देश्य परीक्षा पास करने के लिए मशीनीकृत ढंग से बच्चे को इसके लिए तैयार करना। इतना ही नहीं दोषपूर्ण मूल्यांकन प्रणाली बच्चे के समुचित समावेशन में बाधाएँ खड़ी करती हैं, जैसे-

- दोषपूर्ण मूल्यांकन प्रणाली बच्चे को कुछ विषय विशेष में असफल घोषित करके छलनी का काम करती है इस प्रकार शिक्षा में समावेशन में बाधा पहुँचाती है। परीक्षा प्रधान शिक्षा प्रणाली बच्चों को बाहर धकेलने के औजार के रूप में प्रच्छन्न भूमिका का निर्वहन करती है, परीक्षा के भय एवं असफल होकर बड़ी संख्या में बच्चे शिक्षा तंत्र से बाहर हो जाते हैं।

- परीक्षा में असफलता के लिए एकमात्र बच्चे को जिम्मेदार मान लिया जाता है। सीखने-सिखाने के तौर तरीके, शिक्षण-अधिगम सामग्री, शिक्षण विधियों एवं विद्यालय के माहौल की समान रूप से जवाबदेही होनी चाहिए, इसका कोई संज्ञान नहीं लिया जाता है। वास्तव में परीक्षा में असफलता के लिए बच्चे के आलावा शिक्षा तंत्र/प्रणाली भी जवाबदेह है क्योकि बच्चा कभी भी असफल नहीं होता है, स्कूल प्रणाली भी अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल हो सकती है।
- मूल्यांकन प्रणाली में सदैव यह जानने पर जोर दिया जाता है कि बच्चे को क्या आता है/क्या नहीं आता है? मूल्यांकन प्रणाली में इस बारे में जाँच-पड़ताल करने की गुजांइश होनी ही चाहिए कि बच्चे को इन सबके अलावा क्या-क्या आता है। मूल्यांकन में सीखने के क्षेत्रों को परम्परागत विषयों तक सीमित कर दिया जाता है तथा व्यक्तिगत विविधता का बखूबी हनन किया जाता है। परम्परागत हुनर, कौशल एवं समझ की उपेक्षा की जाती है।

3.विद्यालय तक पहुँच : विगत दो दशकों से भी अधिक समय से विविध परियोजनाओं की उपलब्धि के रूप में इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित किया जाता है कि बहुत बड़ी संख्या में प्रारम्भिक स्तर के विद्यालय खोले गए हैं। विशेषकर सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत 1 किमी0 की दूरी पर प्राथमिक विद्यालय एवं 2 किमी0 की दूरी पर उच्च प्राथमिक विद्यालय संचालित करने का लक्ष्य काफी हद तक प्राप्त कर लेने के दावे किए गए हैं। इसके आंकड़ागत् साक्ष्य भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इसके बावजूद हम अभी भी यह दावे के साथ नहीं कह सकते हैं कि प्रत्येक बच्चे के शिक्षा प्रणाली में समावेशन की चाक चौबन्द व्यवस्थाएँ हमने कर ली हैं। बच्चे की पहुँच में विद्यालय होने के बावजूद अनेकों ऐसे व्यवस्थागत, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारण मौजूद हो सकते हैं जो बच्चे के विद्यालय में पहुँचने में बाधक होते हैं। इन आधारभूत बाधाओं को जब तक दूर नहीं किया जाएगा तब तक शिक्षा प्रणाली में बच्चे के समावेशन के लक्ष्य को पाना सम्भव नहीं हो सकेगा। विद्यालय की बच्चे तक पहुँच से ज्यादा महत्वपूर्ण है बच्चे की विद्यालय तक पहुँच। विशेष जरूरतों वाले बच्चे, बालिकाएँ, अपवंचित वर्गों के बच्चों के सन्दर्भ में यह गम्भीर रूप से विचारणीय विषय है। अभी भी दूरस्थ एवं दुर्गम क्षेत्रों में विद्यालय तक पहुँचने के जोखिम कम नहीं हो पाए हैं।

4.विद्यालयी पाठ्यचर्या : विद्यालयी पाठ्यचर्या के नियोजन एवं क्रियान्वयन में परम्परागत स्वरूप अधिभावी है। एन0सी0एफ0 2005 के आलोक में पाठ्यचर्या निर्धारण की बातें की जाती हैं परन्तु अभी भी खामियाँ हैं। कुछ गम्भीर खामियों का उल्लेख करना अनुचित न होगा, जैसे-

- विद्यालयी विषयों की विषय वस्तु बच्चे के अपने परिवेश एवं वातावरण से सम्बन्धित नहीं होती है। बच्चा ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया से जुड़ नहीं पाता है, सूचनाओं के संग्रहण एवं रटन्त प्रणाली का संवाहक बनकर रह जाता हैं।

- विद्यालयी पाठ्यचर्या विद्यालय अनुभवों एवं जीवन के बीच ठोस रिश्ता स्थापित करने में असमर्थ रही है। विद्यालयी अनुभवों एवं जीवन के बीच अन्तराल बढ़ने पर बच्चे के बहिष्करण का खतरा बढ़ जाता है।
- पाठ्यवस्तु, चित्र, उदाहरण अधिकतर शहरी मध्यम वर्ग को प्रतिबिम्बित करते हैं। यह आम गैर शहरी बच्चे की सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है, इतना ही नहीं यह बच्चे की आत्मछवि/अस्मिता को भी प्रभावित करता है, अपनी संस्कृति के प्रति हीनता बोध पैदा करता है।

5.बच्चे की अस्मिता के प्रति शिक्षक का नजरिया : बच्चे के समाज, संस्कृति, परिवेश के प्रति बच्चे के नजरिए के प्रति जब शिक्षक संवेदनशील नहीं हैं, बच्चे के नजरिए का सम्मान नहीं करता है, किसी विशेष समूह के प्रति हेय दृष्टिकोण रखता है तो बच्चे का अपने समाज, संस्कृति, परिवेश के प्रति नजरिया बदल जाता है और बहुधा वह हेय समझने लगता है, स्वयं को हीन-दीन समझने लगता है। इसकी परिणति पलायन के रूप में होती है। यदि विद्यालय का वातावरण बच्चे के लिए असहज, असुरक्षित, अपमानित करने वाला, हीनता भाव पैदा करने वाला है तो बच्चे के शिक्षा से बहिष्करण के खतरे बढ़ जाते हैं। यह भी एक कटु सत्य है कि वंचित वर्ग एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के साथ अक्सर ऐसा देखने में आता है। अतः स्वयं को विद्यालय में मिसफिट मानकर ये बच्चे बहिष्करण की प्रक्रिया अपना लेते हैं।

अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि शिक्षा में समावेशन में बाधक आधारभूत कारणों को दूर किए बगैर समावेशन के लक्ष्य को पाना असम्भव है। यह प्रयास समुद्र तट की रेत पर कोई इबारत लिखने जैसा ही होगा जिसे समुद्री लहरें मिटाती रहेंगी, कम से कम शिक्षा में समावेशन समावेशन का तदर्थ प्रयास हमें लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकता है।